24/03/2020

MA IV Semester (GE-I)

मानव अधिकार का अर्थ, परिभाषा, ~~विकास~~

डॉ. मनोज कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय
ल. ना. मि. वि. कामेश्वरनगर,
दरभंगा

मानव अधिकारों से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। यह अधिकार भारतीय संविधान के भाग तीन में मूलभूत अधिकारों के नाम से वर्णित किए गए हैं और न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं इसके अलावा ऐसे अधिकार जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकार किए गए हैं और देश के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। मानव अधिकार सबके अर्थात स्त्री, पुरुष, बच्चे एवं वृद्ध लोगों के अधिकार है और सब को समान रूप से प्राप्त हैं। इन अधिकारों का हनन जाति, धर्म, भाषा, लिंग-भेद के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

मानव अधिकार शब्द हिन्दी का युग्म शब्द है, जो दो शब्दों मानव + अधिकार से मिलकर बना है। मानव अधिकारों से आशय मानव के अधिकार से है। मानव अधिकार शब्द को पूर्णतः समझने के पूर्व हमें अधिकार शब्द को समझना होगा –

हैरल्ड लास्की के अनुसार, "अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिसके बिना आमतौर पर कोई व्यक्ति पूर्ण आत्म-विकास की आशा नहीं कर सकता।"

बोसांके के शब्दों में "अधिकार वह माँग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।"

सारांशतः अधिकार वे सुविधाएँ हैं जो व्यक्ति को जीने के लिए, उसके व्यक्तित्व को पुष्पित और पल्लवित करने के लिए आवश्यक हैं। अतः मानव अधिकार को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है– आर. जे. विंसेंट का मत है कि "मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं। इन अधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।"

डी. डी. बसु का मत है कि "मानव ~~अधिकारों~~ अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें

Scanned with CamScanner

प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के मानव परिवार का सदस्य होने के कारण राज्य तथा अन्य लोक सेवक के विरुद्ध प्राप्त होनी चाहिए।"

प्लानो तथा ओल्सन की परिभाषा सर्वाधिक संतुलित है. " मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन. उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य है

ए. ए. सईद के अनुसार :" मानव अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्म-सम्मान का भाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता है।"

सभी लेखकों का जोर मुख्यत: तीनों बातों पर है, पहला मानव स्वभाव, दूसरा मानव गरिमा तथा तीसरा समाज का अस्तित्व।

Scanned with CamScanner

मानव अधिकार अवधारणा का उद्भव एवं विकास, सिद्धान्त और प्रकार

26/03/2020

M.A. 4th Semester [GE-1]

डॉ. मनोज कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय
ल. ना. मि. वि. कामेश्वरनगर
दरभंगा

मानव अधिकारों की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि मानव जाति, समाज तथा राज्य की है। मानव अधिकारों की धारणा का प्रत्यक्ष सम्बंध मानव सुख है, जिसने विकास के क्रम में सामाजिक सुख, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सुख का स्वरूप धारण कर लिया है। "वसुधैव कुटुम्बकम" की अवधारणा को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्रदान करने से मानव अधिकारों का स्वरूप विश्वव्यापी हो गया है।

इतिहास नदी की धारा की तरह है। नदी की धारा कभी प्रबल वेग से बहती है तो कभी शांत और कभी गंभीर मुद्रा अख्तियार कर लेती है, पर नदी कभी थमती नहीं, क्योंकि उसका थम जाना ही नदी की मौत की निशानी है। नदी की मानिंद से ही मानव सभ्यता और संस्कृति का विकास प्रारम्भ हुआ जो आज भी अविरल रूप से जारी है। मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव विकास के ऐतिहासिक अनुभवों के पश्चात् ही मानवाधिकारों की अवधारणा का जन्म हुआ।

आधुनिक विश्व के विकास में मानव अधिकारों की अवधारणा विशेष महत्व रखती है यद्यपि यह विचार 20 शताब्दी में लोकप्रिय हुआ। अन्य विचारों की भाँति मानव अधिकारों का संबंध भी सिद्धान्त से है। जिसमें व्यक्ति, समाज, राजनीति, तथा सरकार के लक्ष्यों को देखा जा सकता है ऐतिहासिक काल में जिसे प्राकृतिक अधिकारों अथवा नैसर्गिक अधिकारों के नाम से जाना जाता था वे ही वर्तमान संदर्भों में मूल अधिकार अथवा मानव अधिकारों के नाम से प्रचलित है।

इतिहास का अनुशीलन करने पर हम पाते हैं कि मानव अधिकार की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है कि जितनी कि मानव का अस्तित्व। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मानव अधिकार की जड़ें सदैव मानव समाज में विद्यमान रही हैं।

Scanned with CamScanner

मानव अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि इन अधिकारों के बिना वह न तो गरिमा के साथ जीवनयापन कर सकता था और न सभ्यता तथा संस्कृति का विकास कर सकता था। लेकिन इसके साथ ही मानव अधिकारों के हनन का सिलसिला भी शुरू हो गया, क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति या समूह दूसरों का शोषण करके ही अपना वर्चस्व बनाये रख सकते थे।

मानव अधिकार की उत्पत्ति के आधारभूत तत्व मनुष्य के प्राचीनतम साहित्य एवं धार्मिक पुस्तकों में उपलब्ध है। कालक्रमानुसार इतिहास के आधार पर दृष्टिपात करें तो देखते हैं कि "बेबीलोनियन नियमों (Babyloniam Low), बेबीलोन के हम्मुराबी (1792-1750 ई.पू.) लेगास के कालीन (3260 ई.पू.) अक्कड़ के सारगोन (2300 ई.पू.) के काल के दौरान भी मानवाधिकार का उल्लेख मिलता है। बाइबिल, रामायण, वेद, कुरान शरीफ, महाभारत, श्रीमद् भागवत, गीता तथा जैन बौद्ध एवं सिक्ख धर्म के ग्रन्थों में मानव अधिकार की अवधारणा चिरन्तन रूप से विद्यमान है हैरोक्लिटस (प्राकृतिक कानून का दर्शन), सुकरात (दार्शनिक), सोफिस्ट प्लेटो, अरस्तू जेनो कौटिल्य, सिसरो और वल्लुर की रचनाओं में भी मानव अधिकार की अवधारणा देखने को मिलती है इन ग्रन्थों तथा महान दार्शनिकों की रचनाएं मानवाधिकार की अवधारणा के आधारभूत तत्व हैं और ये ही मानव अधिकार के मौलिक स्रोत हैं।

मानव अधिकार के सिद्धान्त

मानव अधिकारों के बारे में और गहरी समझ विकसित करने के लिए यह जरूरी है कि इस विषय पर उपलब्ध राजनीतिक सिद्धान्तों का खुलासा किया जाए। इस संदर्भ में कई सिद्धांत उल्लेखनीय है।

प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत — यह अधिकारों के सिद्धान्त का सबसे प्राचीन सिद्धान्त है और इसका उदय प्राचीन ग्रीक में हुआ था। इस सिद्धांत के अनुसार, अधिकार मनुष्य के स्वभाव से संबंधित है इसलिए स्वतः प्रमाणिक सत्य है। प्राकृतिक अधिकार राज्य एवं समाज की स्थापना के पहले से ही मानव के साथ रह रहे हैं या मानव उनका उपभोग करता रहा है। लॉक इस सिद्धान्त का अधिकारी प्रवर्तक था। इस सिद्धांत ने इस धारणा को महत्व प्रदान किया कि मानव अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता है।

अधिकारों का कानूनी सिद्धान्त — यह अधिकार प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा हुआ

Scanned with CamScanner

इस सिद्धान्त के अनुसार, मानव अधिकार राज्य के कानूनी शक्ति द्वारा ही पैदा किया जा सकता है। थॉमस हॉब्स और बेंथम तथा ऑस्टिन ने इस सिद्धांत को विकसित किया अधिकार पूरी तरह से उपयोगितावाद पर आधारित है। व्यक्ति को सामाजिक हित में कुछ अधिकार छोड़ने पड़ते हैं। केवल कानून अधिकारों का जन्मदाता नहीं हो सकता है, इसमें परम्पराएँ, नैतिकता एवं प्रथाएँ आदि भी महत्वपूर्ण योगदान देती है मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए राज्य की भूमिका स्वीकार की गई है।

गैर उपयोगितावादी सिद्धान्त :- नाजिक और जॉनरॉल्स इस सिद्धान्त के प्रवर्तक है। इस विचार पद्धति के अनुसार व्यक्तिगत एवं सामाजिक अधिकारों के मध्य कोई आपसी विरोध नहीं होना चाहिए, बल्कि एक सम भाव जरूरी है।

विधिक यथार्थवादी सिद्धांत → यह एक समकालीन विचार माला है। यह मूलतः अमेरिका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट के 'न्यू डील पॉलिसी' के दौरान उद्भुत हुआ था। कार्ल लेवलीन तथा रेस्को पाउंड जैसे न्यायविदों ने इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया। यह सिद्धान्त मानव अधिकारों के व्यवहारिक पक्ष पर बल देता है।

मार्क्सवादी सिद्धांत — मार्क्स के अनुसार अधिकार वास्तव में बुर्जुवा (पूंजीपति) समाज की अवधारणा है जो शासक वर्ग को और मजबूत बनाती है। राज्य स्वयं में एक शोषणपरक संस्था है, अतएव पूंजीपति समाज एवं राज्य में अधिकार वर्गीय अधिकार है। मार्क्स का दृढ़ विश्वास था कि मानव अधिकार एक वर्गहीन समाज में पैदा और जीवित रह सकता है इस तरह का समाज वैज्ञानिक समाजवादी विचारों के अनुसार ही गढ़ा जा सकता है। सामाजिक और आर्थिक अधिकार इस सिद्धान्त के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत ने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र (1966) को भी प्रभावित किया है। सभी सिद्धांत अपने समय की विशेष दशाओं की उपज है और सब में कुछ न कुछ तथ्य निहित है।

मानव अधिकारों के प्रकार → साधारणतः अधिकारों को दो मुख्य ~~वर्गों~~ भागों में विभाजित किया जाता है — (अ) नैतिक अधिकार (ब) कानूनी अधिकार आधुनिक समाज में अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्थाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहाँ नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों को विशिष्ट महत्व प्रदान किया जाता है। मानव अधिकारों को निम्न श्रेणियों मे विभक्त किया जाता है —

प्राकृतिक अधिकार — मनुष्य अपने जन्म से ही कुछ अधिकार लेकर उत्पन्न होता है। यह अधिकार उसे प्रकृति से प्राप्त होते है। प्रकृति से

प्राप्त होने के कारण ये स्वाभाविक रूप से मानव स्वभाव में निहित हैं (4)
जैसे- जीवित रहने का अधिकार, स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने का अधिकार।

नैतिक अधिकार → नैतिक अधिकारों का स्रोत समाज का विवेक है नैतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनका सम्बन्ध मानव के नैतिक आचरण से होता है। नैतिक अधिकार राज्य द्वारा सुरक्षित नहीं होते हैं, अतः इनका पालन व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर होता है। नैतिक अधिकारों को धार्मिक तथा जनता की आत्मिक चेतना के दबाव में स्वीकार करवाया जाता है।

कानूनी अधिकार → कानूनी अधिकार वे होते हैं, जिनकी व्यवस्था राज्य द्वारा कानून के अनुसार की जाती है और जिनका उल्लंघन राज्य द्वारा दण्डनीय होता है। यह अधिकार न्यायालय द्वारा लागू किये जाते हैं। सामाजिक जीवन का विकास होने के साथ-साथ इन अधिकारों में वृद्धि होती रहती है कानून के समक्ष समानता तथा कानून का समान संरक्षण इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

नागरिक अधिकार → नागरिक और राजनीतिक अधिकार वे अधिकार होते हैं जो मानव को राज्य का सदस्य होने के नाते प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों के माध्यम से व्यक्ति अपने देश के शासन प्रबंध में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग लेता है। उदारवादी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों का विशिष्ट महत्व है।

मौलिक अधिकार → आधुनिक समय में प्रत्येक स्वरूप राज्य संविधान बनाते समय उसमें मूल अधिकारों का प्रावधान करते हैं। जनतंत्र में व्यक्ति का महत्व होता है संविधान में मौलिक अधिकारों का उल्लेख होने से स्वतंत्रता का दायरा स्पष्ट होता है तथा राजनीतिक मतभेदों से इन्हें ऊपर उठा दिया जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए इन अधिकारों को अपरिहार्य माना जाता है।

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार → मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में सबके साथ मिलकर रहना चाहता है। समाज का भाग होने के कारण वह कई आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं का सदस्य भी होता

Scanned with CamScanner

है और उनकी गतिविधियों में भाग लेता है।

मानव अधिकारों के वर्गीकरण की यह फेहरिस्त बड़ी लंबी है समय के साथ-साथ यह फेहरिस्त बढ़ती जा रही है। मानव अधिकारों में कौन से अधिकार महत्वपूर्ण हैं, कौन कम महत्व के हैं, इसका निर्धारण करना कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। मानव अधिकारों के संबंध में वैश्विक घोषणा के बाद मानव अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "मानव जीवन के समग्र विकास के लिए सभी अधिकारों की सुरक्षा एवं क्रियान्वयन अनिवार्य है।"